"भारतीय संस्कृति के विकास में बौद्ध धर्म की भूमिका"

Vijay Sharma

Research Scholar, CMJ University, Shillong, Meghalaya

----------♦----------

भारतीय संस्कृति के विकास में बौद्ध धर्म की अहम् भूमिका है। समय समय पर अनेक धर्मों ने उदित होकर विश्व को नव–नूतन चेतना प्रदान की है। यदि हिन्दू साहित्य धारा में बौद्ध धर्म का मूल्यांकन करें तो इसकी आज भी उतनी ही प्रासांगिकता है जितनी उस समय थी। जिसका ज्ञान इतिहास पढ़ने से होता है।

जब से संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ तभी से मनुष्य अनेक शिल्पी बनी संरचना करता आया है। प्रारम्भ में मनुष्य ने जिन शिल्पों की रचना की वे या तो लुप्तप्रायः हो गए है या फिर साक्ष्यांकन की कसौटी पर खरें नहीं उतरत पुरातत्व विभाग द्वारा इनकी गवेषणा करके प्राचीन वास्तुकला के अवशेषों को प्रकाश मं लाया गया जिनमें अधिकता बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है । इनमें प्रमुख में बौद्ध स्तूप एवं मूर्तियां बौद्ध कला का संज्ञान स्तूपों के सम्प्रेषण से उपलब्ध होता है।

बौद्ध कला प्राचीन भारतीय कला का वह रूप है जिसमें महात्मा बुद्ध तथा उनके प्रतिपादित बौद्ध कला का प्रभाव तथा संदेश कला के रूप में अंकित एवं अभिव्यक्त किया गया है। यद्यपि बौद्ध धर्म का प्रतिपादन छठी शताब्दी ई.पू. में हुआ था तथापि बौद्ध कला का ऐतिहासिक युग मौर्य साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् अशोक महान के समय से शुरू हुआ।

अशोक के शासन काल के अधिकांश स्थापत्य बौद्ध धर्म से सम्बन्धित हैं । मौर्य साम्राज्य के पतनोपरान्त शुंगवंश के शासन काल में बौद्ध कला को क्षति तो उठानी पड़ी परन्तु स्थानीय रूप में इसका विकास होता रहा । कुषाण काल में, कनिष्क के प्रेरणा और उत्साह को प्राप्त करके बौद्ध कला पुनः तीव्र गति से विकास की ओर बढ़ चली । गुप्तकाल में बौद्ध कला की परम्परा बनी रही। हर्ष के समय में बौद्ध कला का पुनः प्रोत्साहन मिला। परन्तु उसके उपरान्त बौद्धकला के विकास की गति अति क्षीण हो गई ।

प्रस्तुत लघु शोध–प्रबन्ध में ''बौद्ध कला के प्रमुख केन्द्रों: एक अध्ययन'' पर कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने सम्पूर्ण बौद्ध कला के प्रमुख केन्द्रों को प्रमाणिक रूप से मानवीयता के मापदण्डों पर निहारा है। जो गुणात्मक दृष्टि से आज भी प्रासांगिक एवं नव–नूतन बन पड़ा है।

प्रथम अध्याय भूमिका का है जिसमें महात्मा बुद्ध का जीवन धर्म, उपदेश, बौद्ध कला की उत्पति एवं उद्भव, बौद्ध कला का विकास, बौद्ध मूर्तिकला बुद्ध मूर्ति का जन्म तथा प्रथम निर्माण, स्तूप शैली, सांची का स्तूप, भरहुत का स्तूप, अन्य स्तूप, विहार तथा निर्माण शैली कला की विशेषताएं है।

द्वितीय अध्याय में उत्तरी भारत के प्रमुख बौद्ध कला के प्रमुख केन्द्रों का वर्णन किया गया है जिनमें प्रमुख हैं सांची, भरहुत स्तूप कला – बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं का अंकन, जातक कथाओं का अंकन, स्तूप की कलात्मक विशेषताओं और कला शैली का वर्णन किया गया । बौद्ध गया, गान्धार, कला शैली की विशेषताएं मथुरा, मथुरा शैली, शैली की विशेषताएं बुद्ध मूर्ति का जन्म या प्रथम निर्माण आदि का वर्णन है । सारनाथ की बुद्ध मूर्तियां, मथुरा की खड़ी मूर्तियां, ताम्र मूर्तियां, भूमि स्पर्श मुद्रा में बुद्ध मूर्ति, प्रस्तर फलकों पर बुद्ध आदि का वर्णन किया गया है ।

तृतीय अध्याय में दक्षिण भारत के प्रमुख बौद्ध कला केन्द्रों अमारवती, अमरावती का स्तूप व बौद्ध मूर्तियों का वर्णन किया गया है और नागार्जुनकोंडा को बोद्ध कला का वर्णन किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय उपसंहार का है । जिसमें प्रस्तुत विषय का निष्कर्ष संक्षिप्त रूप से देने का प्रयास किया गया है ।

भूमिका

जीवन परिचय

भारतीय सभ्यता, संस्कृति और इतिहास के नव निर्माण तथा अभ्युत्थान की दिशा में जिन सुधारवादी धार्मिक ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। बौद्ध धर्म का उनमें प्रमुख स्थान है। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध मानव इतिहास के पुर्नजागरण के अग्रदूत थे । उनका जन्म कपिलवस्तु और देवदह नगर के बीच लुम्बिनी नामक एक सुन्दर वन में शाल वृक्ष के नीचे 505 वि. पूर्व (563 ई.पू.) में हुआ था । शाक्य प्रजातंत्र के क्षत्रिय राजा शुद्धोदन उनके पिता थे और उनकी माता का नाम माया देवी था। कपिल वस्तु उनका छोटा सा गणराज्य था । उनके जन्म के सातवें दिन उनकी माता का देहान्त हो गया । उनकी माता का देहान्त के बाद उनका पालन–पोषण उनकी मौसी महाप्रजापति गौतमी ने किया ।

गौतम के जन्म पर एक भविष्य फल वक्ता देवज्ञों के जन्म के समय ही यह घोषणा कर दी थी कि गौतम आगे चल कर बुद्ध होगा इसी तरह की अन्य भविष्यवाणी एक ब्राह्मण कोण्डिन्य ने की थी ।

बालक से वे युवक हुए और महाराज ने कौलिया प्रजातंत्र की कन्या यशोधरा से उनका विवाह कर दिया यथा समय उनको एक पुत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम राहुल रखा गया । मानव जीवन के विभिन्न कष्टों को देखकर वे हमेशा व्याकुल रहते थे । एक दिन भ्रमण के दौरान उन्होंने एक वृद्ध रोगी, मृतक तथा संन्यासी को देखा ।

उससे उनके अन्दर का वैराग्य की भावना प्रबल हो उठी और एक रात अपनी पत्नी और पुत्र को सोता छोड़कर सत्य की खोज में निकल पड़े । ये प्रख्यात साधुओं, आलार, कलाम एवं राम पुत्र से मिले तथा उनसे उन्होंने शिक्षा प्राप्त की । परन्तु वे सब उनको संतुष्ट न कर सके । फिर उन्होंने घोर तपस्या की जिससे उनका शरीर सूख कर कांटा हो गया परन्तु उनको ज्ञान की प्राप्ति न हो सकी । जीवन को विसर्जित कर देने की इच्छा से वे बोद्धगया के एक पीपल (बोधि वृक्ष) के नीचे प्रतिज्ञा बद्ध हो कर बैठ गए । निरन्तर ध्यान मग्न रह कर सातवीं रात के प्रथम याम में उन्हें सम्बोधि प्राप्त हुई । उन्होंने संसार की उत्पत्ति स्थिति और लय का ज्ञान प्राप्त हुआ । उन्होंने जाना कि अज्ञान, वेदना, तृष्णा, उपादान, जन्म, जरा, मरण शोक, दुख का रहस्य क्या है । जब वे पूर्ण बुद्ध हो गए थे इस समय उनकी अवस्था 36 वर्ष ;527 (ई.पू.) की थी । ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् महात्मा बुद्ध ने अपना पहला उपदेश सारनाथ में दिया ।

बौद्ध साहित्य में इसे धर्म चक्र प्रवर्तन कहा गया है । इसके बाद उनके शिष्यों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती चली गई । साधारण जनता, शासन तथा धनी व्यापारी उनके शिष्य बने । अंत में कुशीनगर में उनका स्वास्थ्य गिरने तथा अतिशार रोग से पीड़ित होने के कारण 450 ई. पूर्व में 80 वर्ष की अवस्था में उनका परिनिर्वाण हो गया ।

बौद्ध कला

बौद्ध कला प्राचीन भारतीय कला का वह रूप है जिसमें महात्मा बुद्ध तथा उनके प्रतिपादित बौद्ध धर्म का प्रभाव तथा सन्देश कला के रूप में अंकित एवं अभिव्यक्त किया गया है । महात्मा बुद्ध के व्यक्तित्व और कृतित्व ने कलाकार के मस्तिष्क को जितना प्रभावित किया था उतना शायद विश्व भर के किसी एक व्यक्ति ने नहीं किया ।

बौद्ध कला का उद्भव एवं विकास

बौद्ध कला में 'कला' शब्द सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का द्योतक है । रेखा, चेष्टा, वाक्, अर्थ–अंकन, रंजन तक्षण आदि किसी भी प्रकार से मानव द्वारा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति पर वह 'कला' बन जाती है । अतः कला का सृजनकर्ता मानव स्वयं ही है ।

कला शब्द कल+कच+टाप से निष्पन है । कला शब्द का सामान्य अर्थ है – किसी वस्तु का छोटा खण्ड या टुकड़ा, चन्द्रमा का सोलहवां अंश, समय का प्रभाग राशि के तीसवें भाग का साठवां अंश, रेखा व्यास आदि । कला धातु का अर्थ शब्द करना भी है । अपने अव्यक्त भावों को कतिपय साधनों द्वारा शब्दों के कवि का लक्ष्य ही कला मानते हैं । = कला अर्थात् क = कामदेव सौन्दर्य एवं आनन्द ला = कला अर्थात् सौन्दर्य की अभिव्यक्ति द्वारा सुख प्रदान करने वाली वस्तु का नाम कला बतलाते हैं।

बौद्ध कला का विकास

यद्यपि बौद्ध धर्म का प्रतिपादन शताब्दी ई. पूर्व में हुआ था तथापि बौद्ध कला का ऐतिहासिक युग मौर्य साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् अशोक महान के समय से शुरू हुआ । इस समय तक बौद्ध कला का ठीक विकास न होने का प्रमुख कारण यह था कि इससे पूर्व निर्माण कार्यों में लकड़ी का प्रयोग किया गया था जो शीघ्र ही कालावतीत गया ।

एक तो लकड़ी के स्थान पर पाषाण का प्रयोग किया जाना और दूसरे अशोक का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर होना इन दोनों कारणों ने बौद्ध कला को विकास करने और समृद्ध होने का सुअवसर प्रदान किया। अशोक के शासन काल में अधिकांश स्थापत्य बौद्ध कला को क्षति तो उठानी पड़ी परन्तु स्थानीय रूप में इसका विकास होता रहा । कुषाण काल में, कनिष्का भी प्रेरणा और उत्साह को प्राप्त करके बौद्ध कला पुनः तीव्र गति से विकास की ओर बढ़ चली । गुप्त काल में बौद्ध कला की परम्परा बनी रही, परन्तु इसे महत्व की दृष्टि से दूसरा स्थान प्राप्त था। अजन्ता की नौंवी तथा दसवीं गुफाओं में बौद्ध विषयक अनेक चित्र हैं।

बौद्ध मूर्तिकला

बौद्ध मूर्ति कला का प्रारम्भ मौर्य सम्राट अशोक के समय से मिलता है । अशोक ने इसक प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया किन्तु भगवान बुद्ध की मूर्ति का निर्माण शुंग काल में ही प्रारम्भ हुआ । बुद्ध मूर्ति की पूजा के प्रचलन के पूर्व बौद्ध मतानुयायी उन स्तूपों की ही पूजा करते थे जिनमें बुद्ध एवं उनके प्रमुख शिष्यों के अवशेष होते थे इन पूजित स्तूपों को चैत्य कहते हैं ।

हीनयान बौद्ध प्रतीकों या स्मारकों की पूजा में ही विश्वास करते थे जबकि महायानी मानुषी रूप में बुद्ध प्रतिमा–निर्माण के पक्ष में थे । अशोक काल में हीनयान का अधिक जोर था । सांची, भरहुत और बौद्धगया की प्रारम्भिक कला–कृतियों में बौद्ध प्रतीकों का ही पूजन मिलता है । शुंगकाल में भक्तिधारा के प्राब्लय एवं हिन्दू देवताओं तथा जैन की मूर्तियों के निर्माण का बौद्ध पर भी प्रभाव पड़ा तथा कुषाण शासक कनिष्क ने भी बुद्ध प्रतिमाओं के निर्माण को प्रोत्साहन दिया इस काल की बुद्ध या बोधिसत्व प्रतिमाएं खड़े रूप में या पदमासन में बैठी हुई मिलती हैं । किन्तु गुप्त कालीन मूर्तियां केवल खड़े रूप में मिलती हैं ।

ज्ञान सम्बोधि प्राप्त होने के पहले बुद्ध की संबा बोधिसत्व थी उसके बाद वे 'बुद्ध' प्रसिद्ध हुए इन दोनों रूपों का चित्रण मथुरा कला में मिलता है ।

बुद्ध मूर्ति का जन्म तथा प्रथम निर्माण

भक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप जब चारों ओर मूर्ति–पूजा निर्माण हो रहा था तो बौद्ध धर्म कैसे निरपेक्ष रह सकता था । तत्कालीन परिस्थितियों में बौद्धों की तृप्ति केवल प्रतीत पूजा से न हो सकी और बुद्ध को मानव रूप में मूर्त देखने की इच्छा एवं आवश्यकता प्रतीत हुई इसी भावना का परिणाम था बुद्ध मूर्ति का निर्माण।

भारत में बुद्ध मूर्ति के सर्वप्रथम निर्माण का स्थान निर्धारित करने में विद्वानों के दो वर्ग हैं । फूशें, विन्सट, स्मिथ तथा जान मार्शल का मत है कि गांधार शैली, जो पूर्णतया ग्रीक कला की उपज है, बुद्ध मूर्ति की जन्मदात्री है । इनके विरूद्ध डॉ. कुमार स्वामी, हेवेल जायसवाल आदि का मत है कि पदमासन में बैठी योगी रूप में बुद्ध की मूर्ति जिसका निर्माण गांधार शैली में हुआ है, भारतीय कल्पना है । कुषाण कालीन मथुरा की मूर्ति कला पर शुंगकालीन भरहुत और सांची की मूर्तिकला का व्यापक प्रभाव है।

भगवान बुद्ध की मूर्तियां प्रायः कई मुद्राओं में देखी जाती हैं। उनमें मुख्य हैं – 1. अभय मुद्रा में जिसमें दाहिना हाथ ऊपर रहता है। 2.

ध्यान मुद्रा जिसमें गोद में खुली हथेली के ऊपर खुली हथेली रहती है। 3. भूमि स्पर्श मुद्रा जिसमें दाएं हाथ से भगवान बुद्ध पृथ्वी को छूते दिखाई पड़ते हैं। 4. व्याख्यान मुद्रा – जिसमें दोनों हाथ छाती के पास आ जाते हैं। 5. वरद मुद्रा जिसमें दाहिने हथेली नीचे की ओर आगे को रहती है।

शुंग कला में मूर्ति कला बहुत विकसित हुई शुंग कला की प्रचुर मूर्तियां भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक मिलती हैं। बुद्ध मूर्ति के निर्माण का एक भी उदाहरण शुंग काल से पूर्व का प्राप्त नहीं होता । संभवतः बुद्ध की पहली मूर्ति पेशावर के पास होती मरदान की मानी जाती है । सारनाथ की महाकाय बोधिसत्व की स्थापना कनिष्क के राज्यकाल में तीसरे वर्ष में हुई यह मूर्ति प्रथम यक्ष जैसी कदावर भारी भरकम कुषाण युग में आन्ध्र प्रदेश में बौद्ध कला की बहुत उन्नति हुई। इनमें अमरावती के स्तम्भ संगमरमर के शिला खण्ड प्राप्त हुए हैं। यहां भगवान बुद्ध की 6 फुट उंची खड़ी मूर्ति अपनी शान्ति और गम्भीरता में अद्वितीय है। अमरावती शैली की एक मौलिक विशेषता है यद्यपि इस शैली की मूर्तियां बौद्ध धर्म से सम्बद्ध है, जिसमें शान्ति और गंभीरता को अधिक महत्व दिया जाता है। तथापि वे जीवन की तीव्र गति, गम्भीर प्राणशक्ति और ओजपूर्ण क्रिया–कलाप को व्यक्त करती हैं। कुछ मूर्तियों में भावावेश उन्माद की सीमा तक पहुंचता हुआ प्रतीत होता है। एक दृश्य में देवताओं की मंडली बुद्ध के कमण्डल को स्वर्ग ले जाती हुई हर्षोन्साद मस्त है।

गुप्त युग में चौथी और पांचवी सदी ई. में बुद्ध, बोधिसत्व तथा अन्य बौद्ध देवी देवताओं की अनेक मूर्तियां प्रचुर मात्रा में बनाई गई। इस युग की मूर्तियों में सौन्दर्य और आध्यात्मिकता दोनों का समन्वय हुआ है। गुप्तकाल में मूर्ति निर्माण के तीन केन्द्र थे –पाटलिपुत्र, मथुरा और सारनाथ। सुल्तान गंज (बिहार) में प्राप्त बुद्ध मूर्ति पाटलिपुत्र केन्द्र की बौद्धगया में चौथी सदी की थी जो बोधिसत्व की मूर्ति प्राप्त है, वह मथुरा में निर्मित हुई थी। धर्मचक्र प्रवर्तन वाली बुद्ध की मूर्ति सारनाथ केन्द्र की बनी हुई है। इस मूर्ति में बुद्ध ध्यानासन में बैठे हैं और उनके हाथ अभय तथा शक्ति की व्यंजना करते हुए नाभि प्रवेश से उपर धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में अवस्थित है।

स्पष्ट है कि बुद्ध मूर्तियां भारतीय मूर्तिकला से ही प्रेरणा लेकर निर्मित हुई एवं भारतीय पृष्ठभूमि से ही बुद्ध मूर्ति का विकास हुआ। बुद्ध मूर्ति का निर्माण भारतीय प्रतीकों के आधार पर ही हुआ है। इनका सर्वप्रथम सुदृढ़ आधार रही है – सर्वतोभद्रिका के रूप में कोरी की गई वे यक्ष मूर्तियों जो निरवलंब खड़ी है। अतः भारतीय परम्परा के अनुरूप प्रेरित होकर बुद्ध मूर्ति को मथुरा में जन्म दिया गया।

अतः उन सभी मूर्तियों से जो पहले प्रथम ई. तक बन चुकी थी उनके विविध अंगों को लेकर ही बुद्ध मूर्ति के समग्र रूप का सम्पादन किया गया। यह तो सभी मानते हैं कि कुषाण काल से पूर्व बुद्ध मूर्ति निर्मित नहीं हुई। कुछ विद्वान बुद्ध की पहली मूर्ति गांधार शैली में ही निर्मित मानते हैं। इनके अनुसार पेशावर के पास होती मरदान के पास से प्राप्त मूर्ति ही बुद्ध की पहली मूर्ति है।

स्तूप

भगवान बुद्ध के महापरिनिर्माण के पश्चात् उनकी अवशिष्ट अस्थियों के आठ भाग किये इनको मगध नरेश अजातशत्रु वैशाली के लिच्छवियों, कपिल वस्तु के शाक्य आदि ने ग्रहण किया तथा भगवान बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त करने के लिए अस्थि भाग पर स्मारक स्वरूप समाधियों का निर्माण करवाया। साधारण भाषा में इन समाधियों को स्तूप कहा जाता है। कहा जाता है कि अशोक ने इन स्तूपों में एकत्रित शव भस्म अस्थियों, केशों तथा दांतों को निकलवा कर 840000 स्तूपों में रखवाया था।

निर्माण शैली

स्तूप का निर्माण एक उल्टे कटोरे के समान अर्द्धगोलाकार के रूप में किया जाता है। इसके शिखर पर आत्मा की सर्वापरिता के प्रतीक के रूप में एक एक दण्ड तथा छत बनाया जाता था। इन स्तूपों के चारों ओर एक जंगला बना होता था जिसकी चार दिशाओं में एक एक फाटक होता था। जंगल में प्रायः अनेक मूर्तियां बना रहती थी जिनमें महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं का चित्रण किया जाता था।

सांची के स्तूप

बौद्ध स्तूपों में सांची के स्तूप समूह को विशेष महत्व प्राप्त है । इस स्तूप में दो छोटे और एक बड़ा स्तूप है। बड़े स्तूप को अशोक या उसके किसी प्रतिनिधि ने तीसरी शताब्दी ई.पू. में ईटों का बनवाया था इसके तल का व्यास 120 फुट तथा उंचाई 15 फुट है। स्तूप के शिखर पर छोटी सी हर्मिका है तथा उसके उपर छत्र का दण्ड है। स्तूप के गुम्बद के चारों ओर प्रदक्षिण मार्ग है। एक प्रदक्षिण मार्ग भूमि के धरातल पर तथा दूसरा थोड़ी उंचाई पर है।

भरहुत का स्तूप

यह मध्य भारत के नागोद राज्य में स्थित था। स्तूप का मुख्य भाग तो नष्ट हो चुका है किन्तु उसके चारों ओर का बाड़ और तोरण वर्तमान है। ये सभी कलकते के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इस स्तूप का निर्माण शुंग वंश के शासन काल में किया गया था। इसके तल का व्यास 68 फुट है। स्तूप के चारां ओर की बाड़ पर बौद्ध कथाओं के चित्र उत्कीर्ण भरहुत की वेदिका स्तम्भों पर बनी हुई पक्षणियों की गणना भारतीय शिल्प के सर्वोत्तम रूपों में की जाती है।

अन्य स्तूप

बौद्ध स्तूपों में सारनाथ के स्तूपों का विशेष महत्व है। वाराणसी से लगभग 9 किलोमीटर दूर स्थित सारनाथ में महात्मा बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था। यहाँ अशोक तथा गुप्तकालीन स्तूप मिले हैं। यहां के धर्मराजिका स्तूप के कुछ भाग अभी भी शेष हैं। ईंटों के बने हुए इस स्तूप का व्यास 60 फुट है। सारनाथ के धामेख स्तूप का निर्माण गुप्तकाल में हुआ था कनिष्क के शासन काल में बने हुए स्तूपों में पेशावर का स्तूप, थाला का व्यास, जलालाबाद का स्तूप तथा अफगानिस्तान का खास्ता स्तूप विशेष महत्वपूर्ण है।

निर्माण शैली

संगठन तथा सहयोग बनाए रखने के लिए स्तूप चैत्य तथा विहार परस्पर सम्बद्ध रू॰ से बनाए जाते थे अजन्ता, कार्ले, भाजा, पश्चिमी घाट, पूना के निकटवर्ती स्थानों में चैत्यों के निकट अनेक विहार मिले हैं। विहारों का निर्माण पत्थर की चट्टानों को काटकर या गुफाओं को खोदकर किया जाता था इनमें भिक्षु तथा भिक्षणियों को रहने तथा साधना करने के लिए अलग–अलग कमरें बने हुए हैं। अनेक विहारों

की दीवारों पर महात्मा बुद्ध के जीवन तथा पूर्व जन्म की घटनाओं का चित्रण है।

भगवान बुद्ध ने नगर के कोलहल से दूर निवास करने की अपने शिष्यों को अनुमति दी थी। धनी लोग विभिन्न प्रकार के निवास बनवाकर बौद्ध भिक्षुओं को दान देने लगे। विभिन्न प्रकार के निवास में पर्वतों में बनाई गई गुफाओं की भी गणना की जाती थी तथा इन गुफाओं को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया। बौद्ध भिक्षुओं के रहने के स्थान को 'विहार' कहा गया। उसके बाद भिक्षुओं के लिए पूजा का स्थान निश्चित हुआ जिसे 'चैत्य' कहा गया।

गुफाएं – मौर्य काल में अशोक तथा उसके पोत्र दशरथ ने अनेक गुहाओं का निर्माण करवाया। अशोक ने बारबर पर्वत को काटकर गुहाओं का निर्माण करवाया।

बारबर और नागाजुर्नी पहाड़ी की गुफाएं

बारबर और नागाजुर्नी पहाड़ी में अशोक तथा उसके पोत्र दशरथ ने अनेक गुफाओं का निर्माण करवाया।

बरबर पहाड़ी

1. कर्ण कोपर गुहा
2. सुदामा गुहा
3. लोमश ऋषि गुहा
4. विश्व झोपड़ी गुहा

नागार्जुनी पहाड़ी

1. गोपिका
2. वहिजक
3. वडलडिक

चैत्य गृह और विहार

अशोक ने जिस गुफा निमाण करने की परिपाटी का आरम्भ किया लेखों में उनको कुंभा कहा गया है। वे बहुत सादे ढंग की है और उनमें खम्बे खम्बे नहीं है। मार्य युग के बाद चैत्य तथा विहार साथ–साथ बनाए जाने लगे।

चैत्यगृह – चैत्यगृह उसको कहा जाता था जिसमें कोई भिक्षु निवास नहीं करता था। वहां पर केवल पूजा की जाती थी। चैत्यगृह की आकृति वृतायत होती थी। अर्थात शुरू का भाग आयताकार और अन्तिम भाग अर्धवृताकार होता था। हीनयान मत में बुद्ध की प्रतिमा का अभाव था और गुफा में प्रतीक के रूप में स्तूप का पूजा–निर्मित स्थान दिया गया।

महायान शाखा में बुद्ध प्रतिमा का निर्माण किया गया। इस प्रकार विहार के केन्द्रीय मण्डप में बुद्ध की प्रतिमा स्थापित की जाने लगी। जहां पर भिक्षुगण पूजा किया करते थे तथा उपदेश सुनते थे। चैत्यों की बनावट लगभग समान है। किन्तु समय समय पर कुछ आकार प्रकार जोड़ दिए गए अथवा सुन्दर बनाने के लिए अलंकारित कार्य किए गए। जैसे झोपड़ी के बांस के ढांचे को मोड़कर गोलाई में स्थिर करते हैं। वही दशा चैत्य मण्डप की है।

विहार

जिसमें बौद्ध भिक्षु निवास करते थे उसको विहार कहा जाता था। विहार के अन्दर एक बड़ा मण्डप होता था। उससे तीन या चार कोठरियां खोदी जाती थी। सामने की दीवार में प्रवेश के लिए एक द्वार होता था उसके सामने स्तम्भों पर आश्रित एक बरामदा रहता था। भीतरी मण्डप की कोठरियां चौकोर होती थी, जिनमें बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। विहार भिक्षुओं का आवास गृह था। एक भिक्षु के लिए एक कोठरी पर्याप्त होती थी। दो भिक्षुओं के लिए द्विगर्भ और तीन भिक्षुओं के त्रिगर्भ शालाएं बनाई जाती थी। जहां पर बहुत से भिक्षु निवास करते थे उसको संघाराम कहा जाता था। विहार की कोठरियां छोटे आकार की होती थी। अनका आकार 9ग9 फुट होता था। इन कोठरियों में एक तरफ भिक्षुओं के सोने के लिए लम्बी चौंकियां बनी होती थी।